Conclusion

उपसंहार

उपसंहार

पूर्ववर्ती अध्यायों के विहंगावलोकन से यह सरलता और स्पष्टता के साथ कहा जा सकता है कि विगत अनेक शताब्दियों से मैथिली नाटक के विषय एवं उनकी प्रतिपादन शैली में निरन्तर विकास होता रहा है। यह नाट्य साहित्य उपयुक्त रंगमंच के अभाव में भी देश-कालानुरूप अनेक उत्सों से सम्पर्क, प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करते हुए जन-मानस को अनुरंजित एवं उद्वेलित करता आ रहा है। पूर्ववर्ती अध्यायों में हमने देखा है कि इसके क्रमिक विकास के अनेक सोपान हैं जिनपर आरूढ़ होने में कभी तो इसकी गति तीव्र दृष्टिगोचर होती है तो कभी मंथर। किन्तु मध्य में व्यवधान नहीं उपस्थित हो सका है। इसकी विकास-धारा अविच्छिन्न रूप से इन सोपानों से होकर जन-रूचि की अनुकूलता को दृष्टि-पथ में रखते हुए, परिवर्तनशीलता के साथ प्रवाहित होती रही है।

संस्कृत-नाट्य-साहित्य के प्रत्यक्ष प्रभाव एवं उसके रूपों में मैथिली गीतों का समावेश इसका प्रथम सोपान है। द्वितीय सोपान में समसामयिक लोकप्रिय रूपों को ग्रहण किया गया है। इस अवस्था में, भिन्न पृष्ठभूमि के कारण, इस की धारा दो भागों में विभक्त हो जाती है। एक में भक्ति का प्राधान्य लक्षित होता है। इसमें मैथिली का प्रयोग केवल गीतों तक ही सीमित है और शास्त्रीय पध्धति पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया गया है। इसके विपरीत इसकी दूसरी धारा में, दरबारी वातावरण के कारण, शृंगार की अधिकता है। कथोपकथन की गद्य शैली में भी मैथिली भाषा ही प्रयुक्त हुई है। इन नाटकों में धर्मनिरपेक्ष कथानकों को भी स्थान प्राप्त हुआ है। इन भिन्नताओं के रहते हुए भी इनके प्रभाव एवं प्रेरणा के आधार और लक्ष्य एक ही प्रतीत होते हैं। इसके पश्चात् लोक-प्रचलित विभिन्न पौराणिक आख्यानों को अपनाकर केवल मैथिली में गीति नाट्यों की रचना इस विकास का तृतीय सोपान है।

जीवन काल से नाटक के क्षेत्र में नया प्रयोग प्रारंभ होता है। इनसे ही वास्तविकरूप में आधुनिक युग का आरंभ होता है। सुन्दर संयोग मैथिली का

प्रथम नाटक है जिसमें पूर्णरूप से मैथिली ही प्रयुक्त हुई है । अपनी कृतियों में इन्होंने संस्कृत-शैली को युगानुरूपता के परिवर्तन के साथ समाविष्ट किया और साथ ही थियेट्रिकल कंपनी की विशेषताओं को भी ग्रहण किया । जीवन झा ने ही सर्व प्रथम नाटकों में सामाजिक कथानकों को स्थान दिया जिनके अनुकरण पर, दो पृथक् धाराओं के समन्वय स्थल पर, अनेकानेक पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों की रचना होती रही । अत: इन प्रवृत्तियों को चतुर्थ सोपान कहा जा सकता है ।

पंचम अवस्था में विभिन्न नाट्यशैलियों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव से विभिन्न सामाजिक प्रवृत्तियों पर नाटकों की रचना प्रारंभ हुई । इस युग के सर्व श्रेष्ठ नाटककार के रूप में असंदिग्धता से प्रो. ईशनाथ झा का नाम लिया जा सकता है । इनके दो नाटक ही मैथिली नाट्य साहित्य की अमर कृतियां हैं । इन्होंने बड़ी सतर्कता और कुशलता के साथ भारतीय और पाश्चात्य शैलियों का समन्वय किया । अपनी विलक्षण प्रतिभा के द्वारा इन्होंने पश्चिम के मनोवैज्ञानिक चरित्र-विकास और संघर्ष को भारतीय रस-धारा में सम्मिलित किया । परम्परा से प्रचलित विदूषक के स्थान पर इन्होंने एक नये हंसोड़ पात्र की कल्पनाकर उसे नाटक में स्थान दिया । नाट्यशास्त्र में वर्जित दृश्यों की योजना भी इनके नाटकों में की गई है । तात्पर्य यह कि नाट्यशास्त्र के बाह्य बंधनों से आधुनिक नाटक साहित्य को मुक्ति दिलाकर, युगानुरूप मान्यताओं को स्वीकार करते हुए उसे विकासोन्मुख बनाया ।

षष्ठ सोपान में इसी मार्ग का अवलम्बन कर विभिन्न प्रवृत्तियों को दृष्टि पथ में रखते हुए नाटक, एकांकी नाटक, रेडियो नाटक आदि रूपों की रचना से नाट्योद्यान को पल्लवित और पुष्पित किया जा रहा है ।

मैथिली-नाटक का भविष्य ----------

मैथिली नाटक अपने अतीत की भांति आज भी विविध शैलियों एवं परिस्थितियों का परिधाणकर रहा है । शैली किसी भी काव्य का बाह्य

रूप है जो देश-कालानुसार परिवर्तित होती रहती है । अत: इसके आधार पर नाटकों की सफलता या असफलता निर्भर नहीं करती । जिस नाटक में मानव-जीवन के अतल में प्रवेशकर उसकी शाश्वत भावनाओं को उद्वेलित करने की क्षमता रहेगी, वही नाटक चिरस्थायी हो सकता है ।

कीर्त्तनियां नाटक के प्रसंग में हम देख चुके हैं कि मौलिक प्रतिभा और जन-जीवन की परख के अभाव में वह परम्परा अन्धकार के गर्भ में विलीन हो गयी । आधुनिक युग के अधिकांश नाटककारों में मौलिक चिन्तन, अध्ययन और जीवन तत्व को पकड़ने की क्षमता का अभाव दृष्टिगत हो रहा है । समर्घ्य प्रसिद्धि के लोभ में, अपने उत्तरदायित्व की उपेक्षाकर, वे अटपटे कथोपकथन मात्र को ही नाटक समझने लगे हैं । इस धारा का अवलम्बन कर मैथिली नाटक-साहित्य की उज्जवल एवं गौरवमय परम्परा प्रवाहित होने में असमर्थ सिद्ध होगी । अतएव आधुनिक युग के उदीयमान नाटककारों का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वे किसी शैली-विशेष में उलझे बिना, मानव-जीवन का चिन्तनकर चिरस्थायी भावों का मनोरम प्रदर्शन अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करें, जिससे उस अविच्छिन्न परम्परा की रक्षा हो सके ।

डा.ओझाजी के शब्दों में -- "जो नाट्यकार बाह्याडम्बर के आवरणों को भेद अन्तर्निहित जीवन-सत्य का संधान करने में समर्थ होता है, उसी की कृतियां अमर रह जाती हैं । जिस कृति में नाट्यकार की दृष्टि जितनी ही व्यापक और तीक्ष्ण होगी, वह नाटक उतनाही चिरजीवी बनेगा । नाटकों में दृष्टि की व्यापकता और तीक्ष्णता घटनाओं के घात प्रतिघात पर भी आश्रित रहती हैं । अत: जिस नाटक की घटनाएं नियति के गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों का उद्‌घाटन कर मानव-जीवन के पथ का निर्देश करती हुई समाज के भविष्य पर प्रकाश-रश्मियां विकीर्ण करेंगी, वही नाटक कल्पनातीत सूक्ष्माति-सूक्ष्म विचारों को प्रस्फुटित करके हमारे मस्तिष्क को प्रोद्भासित और हृदय

को झंकृत करेंगे । ऐसे नाटकों के पठन और प्रेक्षाण से मानव की भावनाएं उदात्त होंगी और दृष्टि व्यापक बनती रहेगी ।"[१] मैथिली नाटकों के भविष्य के संबंध में विद्वान् लेखके कथन को स्वीकार किया जा सकता है जिसे कि पूर्ववर्ती विवेचन में प्रस्तुत कर चुके हैं ।

इतिशम्

---000---

---

१. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास - पृ.४४२-४३.